सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा॥

वर्ष ४] १ जून सन् १९४३ ई० [अङ्क ६

अन्तर द्वन्द्व मिटाले !

[श्री० दिनकरप्रसाद शुक्ल "दिनकर" गोहद]

अन्तर द्वन्द मिटाले, पगले ! अन्तर द्वन्द मिटाले।
अपलक मिलन प्रतीक्षा में रे!
अविरल प्रणय समीक्षा में रे!
विरहानल के प्रखरातप की—
सत् शिव सुन्दर दीक्षा में रे!
गीली नयनकोर से तरलित पल पाँवड़े बिछाले॥ अन्तर... ॥
कसकों की उस चिन्मयता में,
उच्छ्वासों की तन्मयता में,
परम साधना मय जीवन की,
अजर अमर तर मृणमयता में,
खोज क्षितिज के विस्तृत तट पर विस्मृति विह्वलता ले॥ अन्तर... ॥
अकुल अधराधर के स्पन्दन—
बन जायें प्रियतम के चुम्बन।
उर की प्रति हलचल में क्षणपल,
उद्भाषित हों मधुरालिंगन।
निज का प्रिय का भेद हटाले, जीवन ज्योति जगाले।
अन्तर द्वन्द मिटाले पगले ! अन्तर द्वन्द मिटाले,

अखण्ड-ज्योति

उतर स्वर्ग से भूमण्डल पर 'सत्' की अमर ज्योति आती है।
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर ज्ञान गान गाती है॥

मथुरा. १ जून सन् १९४३ ई०

कोई ऐसी भक्ति करेगा ?

हज़रत अबू बिन आदम की एक बार एक फरस्ते (स्वर्ग दूत) से भेंट हुई, वह अपनी बगल में एक बहुत बड़ी पुस्तक दबाये हुए था हजरत ने फरस्ते से पूछा—आपके हाथ में यह कौन सी पुस्तक है ? और किस लिए पृथ्वी पर घूम रहे हैं ? फरस्ते ने उत्तर दिया कि मैं ईश्वर भक्तों की खोज किया करता हूँ और जो मिलते हैं, उनके नाम इस पुस्तक में दर्ज कर लेता हूं। हजरत ने पूछा भाई, आपको थोड़ा कष्ट तो होगा ही, पर इस पुस्तक में यह तो देखो कि कहीं मेरा नाम भी लिखा हुआ है क्या ? फरस्ते ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और एक पेड़ की छाया में बैठ कर पुस्तक को आदि से अन्त तक देख डाला। पर उसमें हजरत का कहीं नाम न था। स्वर्ग दूत चला गया। हजरत बहुत रंज करने लगे कि मैंने अपना सारा जीवन अल्लाह के लिए कुरबान कर दिया, पर सब व्यर्थ हुआ मेरा नाम उसके भक्तों की सूची में भी न लिखा जासका।

बहुत दिन बीत गये। हजरत को फिर एक फरस्ते से अचानक भेंट हुई। इसका रंग ढंग भी पहले जैसा ही था, फर्क इतना ही था कि हाथ में एक बहुत ही छोटी पुस्तक थी। हजरत ने उससे भी पूछा-भाई, तुम कौन हो ? किस-लिए घूम रहे हो ? और जो छोटी पुस्तक तुम्हारे हाथ में है वह कैसी है ? फरस्ते ने कहा-ऐ अबू बिन आदम ! सुन, मैं स्वर्ग दूत हूं और इस पृथ्वी पर ऐसे लोगों की तलाश करता हूँ, जिनकी भक्ति अल्लाह करता है। जो लोग ऐसे मिलते हैं उनके नाम इस छोटी पुस्तिका में दर्ज कर लेता हूँ। हज़रत ने झिझकते हुए पूछा-भाई ! कष्ट न हो तो मुझे यह बतावो ऐसे कितने और कौन कौन भाग्यशाली लोग इस पृथ्वी पर हैं। स्वर्ग दूत ने इस छोटी पुस्तिका में लिखे हुए दस-बीस नामों को एक सांस में सुना दिया-इनमें सब से पहले 'अबू बिन आदम' का नाम था।

इस्लाम धर्म की उपरोक्त कथा एक बड़ी सचाई अपने अन्दर धारण किये हुए है। मुक्ति, स्वर्ग, सम्पदा आदि स्वार्थों के लिए ईश्वर का आश्रय पकड़ने वाले उसकी सेवा, पूजा, जप, कीर्तन करने वाले लोग इस संसार में बहुत हैं, इनमें बहुत से भक्त ऐसे भी मिल सकते हैं, जो दुनिया को ठगनेके लिए तथा व्यापारिक आडम्बर करने के लिए हरिनाम नाम नहीजपते, वरन सच्चे मन से भक्ति करते हैं, तलाश किया जाय तो बेजोड़ों की इस भक्ति को करने वाले लोग पर्याप्त संख्या में मिल सकते हैं और इतने मिल सकते हैं, जिनकी नामा-वली से उस स्वर्ग दूत की सी कई पुस्तकें लिख जावें।

परन्तु आह ! हजरत अबू बिन आदम जैसे तलवार की धार पर चलने वाले वे कर्मनिष्ठ कहाँ हैं, जो ईश्वर की भक्ति नहीं करते, परन्तु ईश्वर उनकी भक्ति करता है। हम लोग मतलबी और खुशामदी चापलूसों पर स्वभावतः खुश रहते हैं, किन्तु यदि कोई ऐसा सज्जन हो जो खुशामद का तो एक शब्द भी मुँह से न निकलता हो वरन हमारी इच्छा को पूरी करने में, आज्ञा पालन करने

अपने सर्वस्व की बाजी लगा देना हो तो उस व्यक्ति के लिये जितना स्नेह सत्कार हमारे मन में होगा उतना मतलबी टट्टू खुशामदी के लिए नहीं हो सकता। कोई आश्चर्य नहीं ईश्वर इन लोगों को प्रधानता देता हो जो उसकी आज्ञाओं को पालन करने में, धर्म का प्रसार करने में, अपना खून पसीना एक कर देते हैं। उत्तम आचरण रखने वाला ईमानदारी की रोटी कमाने वाले, असमर्थों की सहायता करने वाला कर्म निष्ठ, भले ही जप, कीर्त्तन, पूजा पाठ न करता हो वह ईश्वर को अधिक प्यारा होगा। दरवाजे पर पड़ा रहने वाला, पेट दिखा कर दुम हिलाने वाला श्वान भी आखिर अपने मालिक से भोजन प्राप्त कर ही लेता है, पर पसीना बहाने वाले घोड़े को जिस सत्कार से भोजन मिलता है, वह बेचारे श्वान के भाग्य में कहाँ बदा है? घोड़ा न तो दुम हिलाता है और न पेट दिखाता है, वरन् शूरवीर क्षत्रिय की तरह अपना कर्तव्य पालन करने में तत्पर रहता है, उसका यह गुण उत्तम भोजन प्राप्त कराता है साथ ही मालिक का सम्मान और सत्कार भी।

संसार को ऐसे ईश्वर भक्तों की आवश्यकता है, ईश्वर को ऐसे प्रेमी चाहिए जो प्रभु की पुण्य वाटिका को ईमानदार माली की तरह अपने स्वेद कणों से सींच सींच कर हरा भरा रखें। स्वयं अपने आचरण को सचाई और ईमानदारी से परिपूर्ण रखें और दूसरों को भी इसी मार्ग में प्रवृत्त करने का प्रयत्न करें। भगवान् बुद्ध ने कहा था "मुझे तब तक मुक्ति नहीं चाहिए जब तक इस लोक में एक प्राणी बन्धन ग्रस्त है।" महाप्रभु ईसा ने मुक्ति नहीं चाही वरन् अज्ञान ग्रस्तों के पापों का बोझ अपने शिर पर लेकर असह्य वेदना सहन करने के लिए क्रूस पर चढ़ गये। आशिक वह है जो खून देने को तैयार रहे। दूध पीने वाले मजनूं तो चाहे जितने मिल सकते हैं।

इस पुण्य भूमि को छप्पन लाख पेशेवर और उनसे कई गुने बिना पेशेवर भक्त मौजूद हैं। स्वर्ग दूत की हजारों पुस्तकें उनकी नामावली से भरी जा सकती हैं। हमारी पीड़ित, दीनहीन, दुखिया, मातृभूमि को ऐसे भक्तों की आवश्यकता है, जो स्वर्ग की कल्पना के नशे में झूमना छोड़ कर, नरक बनी हुई भूमि को स्वर्ग बनाने में अपना सर्वस्व निछावर करदें। हजरत अबू बिन आदम वालों स्वर्ग दूत की छोटी पुस्तक खाली पड़ी है। ऐसे माई के लाल बहुत कठिनता से मिलते हैं, जिनकी भक्ति करने के लिए ईश्वर स्वयं प्रतीक्षा में बैठा हुआ है। अखण्ड ज्योति के पाठकों में से क्या कोई ऐसी भक्ति करेगा?

कई बार रगड़ने से गीली दियासलाई धुँआ देकर ही रह जाती है और सूखी को एक बार ही थोड़ा घिसने से एक दम जल जाती है। सूखी दियासलाई की तरह सद्भक्त के सामने ईश्वर का नाम लेने से प्रेम की ज्वाला एक दम उबलने लगती है और विषय वासना में फँसे हुए मनुष्य को चाहे जितना सदुपदेश दो, किन्तु गीली दियासलाई की तरह कुछ असर नहीं होता है।

× × ×

जिस तरह पारे के डिब्बे में टूटे हुए सीसे को डाल देने से वह बिलकुल गल जाता है। वैसे ही ब्रह्म के महासमुद्र आत्मा को गिर जाने से वह मर्यादा के अस्तित्व को भूल जाती है।

× × ×

मछली का सिर और दुम बेकार होता है वह खाने के काम में नहीं आता। अतः मांस खाने वाले मछली के बीच का हिस्सा ही रखते हैं, इसी तरह प्राचीन धर्म ग्रन्थों तथा आज्ञाओं को ऐसे छाँटना चाहिए कि वे इस समय की आवश्यकता को पूरा कर सकें।

नागरिकता में देशभक्ति।

(श्री० श्रीप्रकाशजी एम. एल. ए.)

"मेरे दादा की मृत्यु एक ऐसी दुर्घटना के कारण हुई, जिसका प्रतिबन्ध सहज में ही हो सकता था। किसीने सड़क पर लापरवाही से नारंगी का छिलका फेंक दिया था, उसी पर फिसल कर वे गिर गये। उनका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। गिरने से बहुत बड़ा धक्का लगा और वे फिर अच्छे नहीं हुए।" —सी. एफ. एण्डूरूज.

नागरिकता बड़ी सरल वस्तु है अगर हम केवल, इस बात को याद रक्खें कि दूसरों के साथ हम वैसा ही व्यवहार करें जैसी हम आशा रखते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें। साधारण तौर से मनुष्य का यही भाव रहता है कि वह अपनी तात्कालिक सुविधा देखता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि उसकी लापरवाही का परिणाम दूसरों के लिए क्या होगा? जब हम, अपने मकान में सड़क पर या अन्य निजी या सार्वजनिक स्थान में जाते हैं या रेल पर सफर करते हैं तो हमारे सामने सदा अपने भाइयों की लापरवाही का नतीजा देख पड़ता है जिसके कारण दूसरों की जान खतरे में डाल दी जाती है। नारंगी का छिलका तो बड़ी ही निर्दोष वस्तु मालूम पड़ती है और अपने स्थान पर बड़ा सुन्दर भी होता है, परन्तु वही छिलका यदि अविवेक के साथ अनुपयुक्त स्थान पर फेंक दिया जाय तो खासा भयानक हो जाता है।

अच्छा नागरिक सदा इसका विचार रखता है कि दूसरे को उसके कारण अनावश्यक असुविधा या क्षति न पहुँचे। भारत में सब से बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारे घर सुव्यवस्थित हों। घरों में ही बच्चे पाले जाते हैं और वहीं उन्हें अच्छे और सच्चे नागरिक बनने की शिक्षा दी जासकती है। माता पिता बाल्यावस्था में जो छोटी छोटी पर अत्यंत आवश्यक बातों की शिक्षा देते हैं वह मनमें जम जाती है और अपने जीवन का अङ्ग हो जाती है। इसके सामने स्कूलों कालेजों की शिक्षा, यहाँ तक कि आगे चलकर जीवन के अटु अनुभवों की भी शिक्षा कोई चीज नहीं है। अगर हम अपने घरों को देखें तो यह पाते हैं कि वहां सदा सभी चीजें अस्तव्यस्त रहती हैं। सब चीजें सब जगह पर पड़ी हुई हैं और सभी काम सभी जगह लोग अपनी तात्कालिक सुविधा के अनुसार करते रहते हैं। इसी कारण फल और तरकारी के छिलके कागज के टुकड़े आदि चारों तरफ बिखरे रहते हैं और झाड़ू को अपना काम किये देर नहीं होती कि सारा स्थान फिर गन्दा हो जाता है। जान बूझ कर हम किसी की हानि करना नहीं चाहते पर हमें इसका ख्याल ही नहीं होता कि हम कोई अनुचित कार्य कर रहे हैं, क्योंकि हमें किसीने बतलाया ही नहीं कि क्या करना चाहिए! बच्चे, स्त्रियाँ यहाँ तक कि वयोवृद्ध पुरुष भी घरों को सदा अस्तव्यस्त अवस्था में रखने में सहायक होते हैं।

अपने अपने स्थान पर हर चीज ठीक है। अस्थान में वही गंदगी है। हमें वही मिलेगा जिसके हम योग्य हैं। सार्वजनिक अधिकारियों की तरफ से भी सफाई आदि का उन्हीं स्थानों में अधिक प्रबन्ध रखा जायगा जहाँ के रहने वाले उस पर जोर देते रहते हैं और खुद साफ रहते हैं जिन्हें गंदगी, गंदगी ही नहीं मालूम पड़ती जो खुद साफ नहीं रहते, उनके यहां सफाई कोई नहीं करता। यदि हम सदा स्मरण रखें कि छिलके, कागज आदि हमें ठीक स्थानों पर रखना चाहिए तो हम नागरिक शास्त्र के प्रथम अध्याय की अच्छी और उपयोगी शिक्षा प्राप्त करते हैं और हम अच्छे नागरिक बनने अर्थात् सच्चा और स्थायी स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर होरहे हैं। वास्तव में सच्चा नागरिक ही सच्चा देश भक्त है।

मनुष्य कहाँ है ?

(पूज्यपाद श्री स्वामी सत्यभक्त जी महाराज)

सन् ४१ की जनगणना हो गई। सम्भवतः हिन्दुस्तान की जनसंख्या चालीस करोड़ तक पहुंच जायगी, और दुनिया की जनसंख्या तो क़रीब दो अरब है। इतने मनुष्यों के होते हुए भी मनमें यह सवाल उठा ही करता है कि "मनुष्य कहां हैं?" हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं पारसी हैं, पर मनुष्य धर्म के मानने वाले मनुष्य कहां हैं, ब्राह्मण हैं। क्षत्रिय हैं, वैश्य हैं, शूद्र हैं, या अग्रवाल, माहेश्वरी, खंडेलवाल, परवार, पंवार भंगी, चमार, आदि हज़ारों हैं पर मनुष्य जाति को अपनी जाति मानने वाले मनुष्य कहां हैं। हिन्दुस्तानी जापानी, चीनी, अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन, आदि, अथवा बंगाली, पंजाबी, गुजराती, महाराष्ट्री, कर्नाटकी आदि सैकड़ों हैं पर मनुष्य कहां है!

जहाज़ इसलिये बनाये गये थे कि मनुष्य समुद्र पर विजय पाकर सब द्वीपों और महाद्वीपों में मनुष्यता का एक छत्र शासन स्थापित करे पर आज वे जहाज़ मनुष्यता के संहार में लगे हैं, जीवन-निर्वाह की सामग्री समुद्र के पेट में पहुँचाई जा रही हैं, सुविधा और महत्ता में शहरों को चुनौती देने वाले समुद्र विजयी जहाज़ समुद्र के पेट में जा रहे हैं। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि मनुष्य नहीं हैं।

हवाई जहाज बनाने में सफलता मिलने पर सब ने अनुभव किया था कि अब हम आकाश पर विजय पा रहे हैं, मनुष्य मनुष्य में एकता लाने के लिये जहाजों की अपेक्षा दस गुणा प्रयत्न कर रहे हैं। पर आज क्या हो रहा है? देवत्व लाने वाली चीज़ आज शैतानियत ला रही है! इन हवाई जहाजों ने, विमानों ने, संहार करने में जो सफलता पाई है, शैतान को उसका मुश्किल से स्वप्न ही आया होगा। यह सब क्यों हो रहा है! क्योंकि आज दुनियां में मनुष्य नहीं है।

रेडियो का आविष्कार कितना भला है। हजारों कोस के सन्देश इस तरह सुने जाते हैं मानो रंग मंच की आवाज़ दर्शक सुन रहे हों, इससे मनुष्य मनुष्य के कितने पास आ जाता है, पर अब क्या हो रहा है! रेडियो का काम परस्पर निन्दा और झूँठा प्रचार कर एक दूसरे को लड़ाने का रह गया है वरदान अभिशाप बन रहा है। क्यों! क्योंकि मनुष्य नहीं हैं।

विज्ञान के प्रत्येक अविष्कार की यही दुर्दशा हो रही है विज्ञान ने जितना अमृत दिया है उससे अधिक विष—संहारक अस्त्रशस्त्रादि—दिया है, मानों कामधेनु के स्तनों में से हलाहल निकल रहा है। यह सब इसलिये कि आज दुनिया में मनुष्य नहीं हैं।

भारतवर्ष के ऊपर जब नज़र जाती है तब और भी निराशा होती है। एक दिन भारतवर्ष मनुष्यता का कारखाना रहा होगा पर आज क्या है। आज यहां की मनुष्यता नहीं, मनुष्यता का अभाव ले जाता है।

भारतवर्ष अभी गुलाम है इसलिये इसकी राष्ट्रीयता मनुष्यता के विरुद्ध नहीं है, इसका कारण हमारी उदारता नहीं है, परन्तु मनुष्यता के एक अंश का भी अभाव है। हम में मनुष्यता तो है ही नहीं, किन्तु उसके अंगरूप में राष्ट्रीयता भी नहीं है। हिन्दी महाराष्ट्री, ब्राह्मण, अब्राह्मण, बंगाली बिहारी आदि इतने झगड़े इसमें हैं कि मनुष्यता का दर्शन करना भी हमें मुश्किल है, उसका पाना तो दूर की बात है।

[illegible] भारत की राष्ट्रीय संस्थाओं में मनुष्यता के दर्शन होंगे, परन्तु वहाँ भी भीतर तक साम्प्रदायिकता और जातिवाद जड़ जमाये बैठा है।

कुछ संस्थाएँ तो जाति या सम्प्रदाय के नाम से ही खड़ी है और राष्ट्रीयता का दावा करती हैं पर जो नाम से राष्ट्रीय हैं उनमें भी हजार में नवसौ-निन्यानवें आदमी ऐसे हैं जो सम्प्रदाय या जाति से ऊँचे नहीं उठ पाते हैं, मनुष्यता का परिचय नहीं दे पाये हैं।

कहने को प्रजातंत्र के रूप दिखाई देते हैं पर मनुष्यता के अभाव में वे सिर्फ [illegible] बने हुए हैं।

अगर आज दुनिया में मनुष्य हो तो मनुष्याकार प्राणी मनुष्याकार प्राणियों का भक्ष क्यों बने! अंग्रेजों का स्वार्थ और हिन्दुस्तानियों का स्वार्थ अलग अलग क्यों हो? एक कुटुम्ब की तरह सभी मिलकर भरपेट रोटी क्यों न खावें! अगर मनुष्य हों तो जापान अपने गुरु चीन पर बम क्यों बरसावे! एक ही नस्ल के हिन्दुस्तानी—वे चाहे हिन्दू रहे हों या मुसलमान बन गये हों—भिन्न जाति के दो प्राणियों से अधिक दूर क्यों हो जांय, पाकिस्तान की समस्या क्यों खड़ी हो!

मनुष्य के सिर पर एक से एक बढ़कर कठिनाइयाँ हैं, उन कठिनाइयों से लड़ने में मनुष्य की शताब्दियाँ लग जायेंगी। दुःख की आज कुछ कमी नहीं है—प्राकृतिक दुःख, शारीरिक दुःख आध्यात्मिक दुःख सैकड़ों हजारों हैं, इन्हीं के मारे मनुष्याकार प्राणी कराह रहा है फिर समझ में नहीं आता कि लड़ झगड़कर और दुःखों को निमन्त्रण क्यों दिया जाता है। मोठा खाते खाते जब कोई ऊब जाता है तब कहा था [illegible] [illegible] है, हम सुख भोगते भोगते ऊब आये तो दुःख ढूँढे उसके लिये लड़ें, झगड़ें, पर जब सुख का [illegible] मिलना मुश्किल है तब उससे ऊबने की मूर्खता क्यों कर रहे हैं इसलिये कि हम मनुष्य नहीं बने हैं।

अगर हम मनुष्य बन जाँय तो हमें यह चिन्ता न हो कि दुनिया के किस कोने पर कौन मनुष्याकार प्राणी ऐसा है जो लूटा जा सकता है, पर यह चिन्ता हो कि जगत के किस कोने पर कौनसा मनुष्याकार प्राणी भूखा पड़ा है उसके पेट में अन्न कैसे पहुँचाया जा सकता है! जरा हम उस युग की कल्पना तो करें जब प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव करता है कि मेरा रक्षक सारी दुनिया है, जब प्रत्येक राष्ट्र यह अनुभव करता है कि मैं नर-राष्ट्र का एक नगर हूँ, मेरा दुःख सुख मानव-राष्ट्र के दुःख से अलग नहीं है, किसी को किसी का भय नहीं है, सब को सभी का भरोसा है। जिस दिन मनुष्याकार प्राणी यह अनुभव कर सकेंगे उस दिन पर सहस्त्राब्दियों की वैज्ञानिक या भौतिक उन्नति न्यौछावर की जा सकेगी।

आज की दुर्दशा देखकर तो यही बारबार मुँह से निकलता है कि "ए खुदा! ए गॉड! ईश्वर तूने मनुष्याकार जन्तु पैदा करने में जितनी मिहनत की उससे आधी या चौथाई मनुष्य पैदा करने में क्यों न की?'

ओह, आज दुनिया में सब कुछ है, जल थल आकाश पर राज्य है, कला कौशल विज्ञान हाथ में है, पांचों भूत वश में हैं वेद कुरान पुराण मन्दिर मसजिद गिरजा भी हैं। क्या नहीं है। नहीं है तो सिर्फ मनुष्य नहीं है, इसलिये यह सब व्यर्थ है।

आज है कोई माई का लाल जो दुनिया को मनुष्य बनावे, और कोई माई का लाल जो मनुष्य बने। नई दुनियाँ

नवयुग आरहा है

(योगी अरविन्द घोष)

अब पुनर्संगठन का युग आगया है। भारत की उन्नति का आरम्भ होगया है विपत्ति की काली घटा जो भारत के गगन में मँडरा रही थी, हट रही है। पूर्व आकाश में उषा का उज्ज्वल प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। प्रकृति के गुप्त मन्दिर में सुन्दर दीपक सज्जित होगया है, शीघ्र ही भगवान की आरती उतारी जायगी। नवीनयुग के आरम्भ में धर्म,नीति, विद्या ज्ञान इत्यादि अनेक प्रकार के आन्दोलन मनुष्य समाजों में अवतीर्ण हुए देखे जारहे हैं,किन्तु यथार्थ सत्य का पता तब भी किसी ने नहीं पाया है। सब से प्रथम भारतवर्ष ही इस सत्य का पता लगाने में समर्थ होगा। आज संसार में जिस नये युग का आविर्भाव होगा, जिस धर्म, सत्य, प्रेम, न्याय तथा एकता को भगवान ने पृथ्वी पर प्रतिष्ठा करने की इच्छा की है, वह वर्तमान मानव चरित्र के आंशिक परिवर्तन में संभव नहीं। आधुनिक मानव जाति के बीच कानूनी-बन्धन-विधान चलाने से काम नहीं चल सकता। एकबार काया पलट करनी होगी, पुराने संस्कारों से यह कार्य सिद्ध नहीं होगा, बाह्य जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन लाने से अथवा मनुष्य के कार्य परम्परा की धारा बदल देने से भी यह पूरा नहीं होगा। आवश्यकता इस बात की है कि यह पुनर्संगठन भीतर से आरम्भ होना चाहिए। मानव अन्तःकरण को एक दम नया आकार प्रकार धारण करना होगा। मन, प्राण और चित्त की वृत्तियों में पूर्ण रूप से परिवर्तन करना होगा। इस पार्थिव जीवन में ही देवता की लीला परिपूर्ण होगी। इसी महान संकल्प को लेकर हम साधना के मार्ग में अग्रसर होंगे।

हमारी जातीय विशेषता।

(श्री० स्वामी विवेकानन्दजी)

इंग्लैण्ड में एकबार एक महिलाने मुझसे पूछा—"हिन्दुओं ने क्या किया है? तुम लोगों ने कभी एक जाति को भी नहीं जीता!" अंग्रेज जाति के लिए जो साहसी वीर क्षत्रिय प्रकृति के हैं, दूसरे को विजय करना गौरव की बात समझी जाती है। यद्यपि उनकी दृष्टि से यही ठीक है, लेकिन हम लोगों की दृष्टिके इस बिलकुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से पूछता हूं कि भारत की श्रेष्ठता का क्या कारण है तो यह उत्तर पाता हूं कि इसका कारण यह है कि "हम लोगों ने कभी दूसरी जाति को नहीं जीता!" यही हम लोगों के लिए अत्यन्त गौरव की बात है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हम लोगों का धर्म जो अन्य धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है, यही एक प्रधान युक्ति है। हम लोगों का धर्म कभी दूसरे धर्म को विजय करने में प्रवृत्त नहीं होता, वह कभी दूसरों का खून नहीं बहाता। इसने सदा ही आशीर्वाणी और शान्ति वाक्यों का उच्चारण किया है। सब से प्रेम और सहानुभूति की बातें कही हैं। केवल यहीं पर दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति का भाव कार्य रूप में परिणत हुआ है। दूसरे देशों में धर्म केवल मत मतान्तर के ही रूप में रहा है। केवल यहीं पर हिन्दू लोग मुसलमानों के लिए मस्जिद और ईसाइयों के लिए गिर्जाघर बनवाते हैं। हिन्दुओं ने अपने इन उदार भावों को संसार में कई बार फैलाया है, लेकिन बहुत धीर और अज्ञात भाव से। भारत सभी कालों में ऐसा ही करता रहा है। भारतीय चिन्ता का एक लक्षण उसका शान्तभाव उसकी नीरवता है। उसके पीछे जो प्रबल शक्ति रही है उसे प्रकाशक शब्दों से नहीं कहा जासकता।

थकान मिटाने की साधना

डाक्टर कलुराट डी. सी. ने इस बात पर बड़ा दुख प्रकट किया है कि—'थकान' की बीमारी मंदाग्नि से भी अधिक मात्रा में फैली हुई है। ऐसे आदमी मिल सकते हैं जिनका पेट साफ रहता हो पर ऐसे मनुष्य मिलना कठिन है जो थकान की बीमारी से ग्रसित न हों। काम करने के उपरान्त थकान आना वैसी ही स्वभाविक है जैसी कि दिन के बाद रात। थकान इसलिये आती है कि हम विश्राम की आवश्यकता अनुभव करें और जबतककि नवीनशक्ति उत्पन्न होजाय तब तक और अधिक काम न करें। हम लोग विश्राम करते हैं परन्तु बे कायदे। इसका फल यह होता है कि बहुत समय तक आराम करने के बाद भी जैसी चाहिये वैसी चैतन्यता प्राप्त नहीं होगी सवेरे सोकर उठने पर भी चहरा उदास और मन गिरा गिरा सा रहता है।

पूरा विश्राम वह है जिसमें शरीर के साथ मनको भी आराम करने का मौका मिले। रात को सोते समय स्वप्नों का तांता लगा रहता इस का अर्थ यह है कि मन काम में जुटा हुआ है। जिस प्रकार सामर्थ से अधिक दूर पैदल चलने पर पैरों में दर्द जलन होती है और विश्राम के समय में भी बेचैनी रहती है इसी प्रकार बेतरतीब और बेजा तरीके से मस्तिष्क का उपयोग करने पर मानसिक तन्तु उत्तेजित होजाते हैं और न सोते समय भी विक्षिप्त रहते हैं।

कोई भी मानसिक कार्य लगातार अधिक समय तक न करना चाहिये। दिमागी काम अधिक से अधिक तीन चार घंटे करने के पश्चात कम से कम एक घंटा आराम अवश्य करना चाहिये। यह आराम ऐसा होना चाहिये जिसमें शरीर को ही नहीं वरन् मनको भी चैन मिले। कई लोग छुट्टी के समय में शतरंज जैसे कड़े दिमागी खेल खेलते हैं इससे उन्हें आराम मिलना तो दूर रहा और थकान बढ़ती है। मनको आराम देने का ढंग ऐसा होना चाहिये जिससे उस पर शारीरिक खिंचाव का भार कमसे कम पड़े, बाहर की चिन्ता में तो उस समय बिलकुल ही हटा देनी चाहिये और [illegible] भी आराम करना चाहिये कि शारीरिक कार्यों के कारण नाड़ियों पर पड़ने वाला दबाव मन तक कम से कम मात्रा में पहुँच पावे। ऐसा आराम यदि थोड़ी देर भी मिल जावे तो वह घंटों सोने की समता कर सकता है। नेपोलियन कुछ ही देर घोड़े की पीठ पर झपकी लेकर अपनी नींद पूरी कर लेता था।

डाक्टर कलुराट ने एक बहुत ही उत्तम विश्राम की मानसिक साधना विधि बताई है। वे कहते हैं कि—आराम करने के लिये एक मुलायम बिस्तर पर चले जाओ और शरीर ढीला करके चित्त लेट जाओ। कुछ देर अपने को तन्द्रा की दशा में चले जाने की भावना करो और तदुपरान्त शरीर से मनको अलग करने का अभ्यास करो। ऐसा अनुभव करो कि तुम अपने शरीर के टुकड़े टुकड़े करके अलग हटा रहे हो। पहले यह कल्पना करो कि तुम्हारा एक हाथ दूसरे कमरे में चला गया है, फिर दूसरा भी। इसी प्रकार अलग अलग कमरों में शरीर के सिर, पैर, पेट छाती आदि अंगों को भेजदो। समझो कि शरीर के सारे अंग अन्यत्र चले गये उनसे हमारा कुछ भी संबन्ध नहीं है। केवल मन यहाँ पर पड़ा हुआ है यदि केवल दस मिनटभी तुम इन भावनाओं को विश्वास के रूप में परिणित कर सकोगे तो देखोगे कि साधना से उठते शरीर में एक नवीन स्फूर्ति और उत्साह भर गया है। जब तुम्हें आराम करना हो तो इस क्रिया को अपनाओ तुम देखोगे कि इस विधि से थोड़ी देर में बहुत आराम मिल जाता है और और दिमाग दूने उत्साह के साथ करने में समर्थ होजाता है।

अध्यापक, वकील, विद्यार्थी, लेखक, संपादक, क्लर्क या ऐसे ही अन्य दिमागी काम करने वाले महानुभाव यदि अपनी थकान मिटाने के लिये डाक्टर कलुराट ने इस नुसखे को काम में लावें तो वे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं और प्रायः मानसिक थकान से जो कि लकड़ी के घुन की तरह शरीर को खोखला करती रहती है छुटकारा पासकते हैं। रात को सोने से पूर्व इस विधि का प्रयोग में लाने से स्वप्नों की बाढ़ रुक जाती है और मीठी नींद आती है ऐसा भी उपरोक्त डाक्टर साहब का मत है। यह सरल विधि पाठकों को सर्वथा उपयोगी है।

ईसप की नीति शिक्षा
कुछ कडुई सचाइयां।

१—एक कौआ भेड़ की पीठ पर बैठा था और उसकी चमड़ी खोंट खोंट कर खा रहा था। भेड़ ने उसे उड़ाने की बहुत कोशिश की पर उड़ा न सकी। इस पर उसने दुखी होकर कहा—दुष्ट, यदि तू कुत्ते की पीठ पर बैठता और उसके साथ ऐसा व्यवहार करता तो उसके दाँत और नख तुझे अच्छी शिक्षा देते। कौए ने कहा—भोली भेड़, तू नहीं जानती, मैं बलवान के सामने झुकजाता हूँ और निर्बल को सताता हूं। इसी नीति के कारण तो मैं अब तक जिन्दा हूं।

२—एक गधा जंगल में चर रहा था उसने देखा कि एक बाघ मुझे पकड़ने के लिए पास ही आ पहुँचा है। बचने का कोई उपाय न देखकर गधे ने एक उपाय सोचा। वह लंगड़ा लंगड़ा कर चलने लगा। बाघ जब गधे के पास आगया और उसे लंगड़ाता हुआ देखा तो पूछा कि—लंगड़ाने का क्या कारण है? गधे ने कहा मेरे पिछले पैर में एक बड़ा काँटा लग गया है। आप पहले उसे निकाल लीजिए तब मुझे खाइये नहीं तो काँटा आपके मुंह में गड़ जायगा। बाघ की समझ में यह बात आगई वह पिछले पैरों के पास बैठकर काँटे की देख भाल करने लगा। गधे ने अच्छा मौका देखा और बड़े जोरों से उसके मुंह पर दुलत्तियां लगाईं जिससे बाघ तिलमिला कर गिर पड़ा और गधा तेजी के साथ अपने प्राण बचाकर भाग गया।

३—एक वृक्ष के खोखले में एक बिल्ली अपने बच्चों समेत रहती थी। उसी वृक्ष के ऊपर चील का घोंसला था और नीचे सियारी रहती थी। बिल्ली ने सोचा कि इन दोनों से ही मुझे खतरा है इसलिए किसी प्रकार इन्हें आपस में भिड़ाकर नष्ट करना चाहिए। वह चील के पास पहुंची और बोली—'बीबी देखती नहीं, यह सियारी रोज पेड़ की जड़ें खोदती है यह चाहती है कि इस प्रकार एक दिन पेड़ को गिरा कर तुम्हें मार डाले।' दूसरे दिन वह सियारी के पास पहुंची और कहने लगी कि—'दीदी! यह चील बड़ी दुष्ट है यह चाहती है कि जब तुम चरने जाओ तभी वह तुम्हारे बच्चों को खाजाय।

बिल्ली के बहकावे में आकर चील और सियारी आपस में परस्पर दुश्मन हो गईं। दोनों ने चरना छोड़ दिया और एक दूसरे की निगरानी करने में बैठी रहने लगीं। इस तरह कुछ दिन में दोनों भूखी प्यासी मर गईं और बिल्ली निष्कंटक रहने लगी।

जो अपना भला बुरा न सोचकर दूसरों के बहकावे में आजाते हैं उन्हें चील और सियारी की तरह मरना पड़ता है।

४—एक मुर्गी बड़ी दयालु थी। वह सब पर दया करती थी। एक दिन उसे रास्ते में सांप के अण्डे पड़े मिले। वह उन को सेने लगी। यह देखकर पतंगे ने कहा—ओ मूर्ख मुरगी! जिन अंडों को तू से रही है उनके बच्चे पैदा होते ही सब को हानि पहुंचावेंगे और यह हानि पहले पहल तुझ से ही शुरू होगी।

दुष्टों की सहायता न करनी चाहिए।

५—एक भूखा सुआ सेमर के पेड़ पर जा बैठा और उसके फलों को देखकर, कहने लगा जब ये फल पक जांयगे तो इन्हें खाकर तृप्त हूंगा! उस पेड़ पर रहने वाले कौए ने सुआ से कहा—भाई, यह फल उस जाति के नहीं हैं जो किसी का पेट भरने के काम आते हैं।

दुष्ट से किसी को सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए।

६—एक बार बड़ी भारी गर्मी पड़ी। चारों ओर कोलाहल मच गया। पंडितों ने बताया कि सूर्य नारायण विवाह करने वाले हैं इसलिए इतना तेज दिखा रहे हैं। सूरज के विवाह की बात सुनकर मेंढक खुशी से टर्राने लगे। एक बुड्ढे मेंढक ने उनसे कहा सूरज के विवाह में तुम्हें खुश होने की क्या जरूरत है! अभी एक सूरज इतना गरमाता है तो जब उसकी औलाद होगी तो दूनी गरमी पड़ेगी। और तालाब का पानी सूख जाने से बड़ा कष्ट सहना पड़ेगा।

दुष्टों की बढ़ती देखकर खुश नहीं होना चाहिए।

मुझे मांस नहीं चाहिए !

(ले०—श्री रोबर्ट चीटले)

'बेटा! यदि तुम मांस न खाओगे, तो बीमार पड़ जाओगे और मर जाओगे' कहती हुई माता की बचपन की याद आ जाती है। तब मैं कहता था—'बस, अब मैं चावल, गुलगुले और न लूंगा।' लेकिन जब मैं कहता था—'मुझे मांस नहीं चाहिए', तो आश्चर्य और भय से उसके हाथ ऊपर उठ जाते थे और वह कहती थी—'तुम त्रिकाल में भी बलवान और बड़े आदमी न हो सकोगे।' इसलिए मैं बरसों तक प्रति दिन मांस खाता रहा।

कितने लोग मांस—भक्षण को स्वस्थ रहने का उपाय बता कर विवाद करते हैं। कितने लोग नहीं समझते हैं कि वे क्या कह रहे हैं, जब वे मांस को स्वास्थ्य-वर्द्धक बताते हैं? क्या उन्होंने मांस के गुण-दोषों का अध्ययन किया है?

मैं जितना बड़ा होता जा रहा हूं, उतना ही मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा है कि करोड़ों लोगों का स्वास्थ्य, उस स्वास्थ्य की छाया भी नहीं होता है, जो वास्तव में होना चाहिए। इसके साथ-साथ मुझे इसमें भी सन्देह नहीं है कि हमारे रोगों व व्याधियों का कारण अव्यवस्थित भोजन के सिवा कुछ भी नहीं है।

अपने सत्य की खोज करने से मुझे ज्ञात हुआ है कि संसार के सब से बड़े कलाकारों में कई निरामिष भोजी हैं। उदाहरण के लिये संसार प्रसिद्ध विचारक नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा को ही लीजिए। शा के डाक्टरों ने कहा था, कि मांस बिना तुम मर जाओगे। उसने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया—'अच्छा! हमें केवल प्रयोग करके ही देखना चाहिए। यदि मैं जीवित रहा, तो आशा करता हूं जार्ज बर्नार्ड शा जीवित हैं, जो कि आज ४० वर्ष बाद डाक्टर पुरानी बात कहते ही हैं। ऐसे ही अवसर पर शा ने कहा था—'मेरी स्थिति गम्भीर है। मैं जी सकता हूँ, बशर्ते मांस की बोटियाँ खाऊँ। लेकिन राक्षसी वृत्ति से मृत्यु-पत्र (will) में अपनी अन्तिम क्रिया की विधि का भी संकेत कर दिया है, जिसमें शोकार्त लोगों की घोड़ा-गाड़ियाँ न आयेंगी, बल्कि मेरे जनाजे के पीछे गाय, बैल, बकरी, मुर्गी, मुर्गे वगैरह पक्षी और जीवित मछलियों सहित एक छोटा सा बनावटी तालाब चलेगा। यह सब जीव उस व्यक्ति के प्रति आदर प्रकट करने के लिए गले में सफेद रूमाल बांधे रहेंगे, जिसने उनके बन्धुओं को खाने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसन्द किया। नोह के जहाज (महावीर के समवशरण) के सिवा यह दृश्य संसार के लिये अभूतपूर्व होगा।

जार्ज बर्नार्ड शा अपनी [illegible] के लिये मशहूर हैं। वह कहते हैं कि मैं हमेशा अन्त में एक सन्तरा खाकर अपना भोजन समाप्त करता हूं। वह लिखते हैं—जब हम उन लोगों का विचार करते हैं, जिनका जीवन गाय, बकरी और सूअर वगैरह के पालने में बीतता है—वे इन पशुओं को चराते हैं, जोतते हैं, रोगों से बचाते हैं और उनके लिये हजारों दिक्कतें उठाते हैं और इस तरह उन्हें उन लोगों सरीखा ही हृष्ट-पुष्ट और वयस्क बना देते हैं, जिनके लिये वह [illegible] बलि किये जाते हैं। मैं अपने से पूछता हूं कि वह सुदिन कब आयगा, जब मार खाने के लिये ही पशु-पालन अपराध घोषित किया जायगा।

मांस भोजन के विरुद्ध होने वाले आन्दोलन का एक सुअवसर है। जब हम क्रमशः विकास करके इस बला से छुटकारा पा सकते हैं। आज अनेक बड़े बलवान पुरुष मांस नहीं छूते हैं। सुन और

स्वार्थ का दुरुपयोग

(ले०—पं० राधेश्याम द्विवेदी, वकील कोर्ट, ग्वालियर)

आधुनिक समय में स्वार्थ-परायणता का दुरुपयोग अत्यधिक व्याप्त है, परिणामतः सामाजिक असाधारण हानि हो रही है स्वयं को तो हानि हुई है ही।

कारण इसका यही प्रतीत होता है, कि आध्यात्मिकता का अर्थ का अभाव है। स्वार्थ 'शब्द' वस्तुतः क्या है? इसका भली भाँति ज्ञान नहीं है, दूसरे, मनुष्य वह कर्त्तव्य अच्छा समझते हैं, जिसके आरम्भ करते ही उन्हें क्षणिक सुख-आनन्द का आभास जान पड़े, फिर भले ही वह पीछे दुखदायी हो, ऐसा आनन्द क्षण स्थायी, अनित्य है।

स्वार्थ (स्व + अर्थ) = अपना अर्थ, विचार की बात है कि अपना अर्थ का क्या स्वरूप है? अपना अर्थ है आध्यात्मिक उन्नति करना। अनासक्त भाव से कर्त्तव्य-परायण रहना। मोह का आश्रय लेकर कर्त्तव्य करने से ही 'स्व-अर्थ' का दुरुपयोग होता है।

'स्व—अर्थ' 'स्व' शब्द का सम्बन्ध आत्मा से है स्व-अर्थ का सदुपयोग आत्मोन्नति है और वह तब ही हो सकेगी, जब कि हम जीव-मात्र को एक ही आत्म-स्वरूप होने का अनुभव करें।

एक ही आत्म-स्वरूप होने से अपने-पराये का भेद भाव मिटावें। एक वस्तु से यदि किसी को लाभ होता है अथवा उसका उपकार होता है, तो हमें यही उचित है कि वह लाभ या उपकार अपना ही समझें, इस नाते उस लाभ या होने वाले उपकार में ठेस न पहुंचावें। देह पृथक होने से उस नित्य चिर-सम्बन्धी-आत्मा को न भूलो, आत्म सम्बन्ध एक ही है, माया ही अपना एवं पराये को जनाती है, अतएव नित्य स्थायी आत्मोन्नति के कर्त्तव्य का निश्चित करके "स्वार्थ" का सदुपयोग करो।

पराये के साथ हानि पहुँचाने वाला ध्येय रखकर अपने को अवैध लाभ पहुंचाने का जो प्रयास करते हो। वास्तव में वह "स्वार्थ" का दुरुपयोग है। तुम्हारे ही कर्त्तव्य अन्त में निर्णय देते हैं कि तुमको अवैध लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य के बदले हानि पहुंचेगी एवं जिसके प्रति हानि पहुंचाने का उद्देश्य है, वह हानि पहुँचाने से सुरक्षित रहेगा।

अनुभव करो कि अपने हाथों ही अपनी उन्नति हो रही है। स्वार्थ का सदुपयोग हो रहा है।

तथा शक्ति परोपकार करना, आत्मा के हित में रत रहना ही स्वार्थ के दुरुपयोग—जनित—पतन से बचा पाता है।

व्यक्तित्व आकर्षक होता है। जो उन्हें देखता है, उस पर उनकी मधुर ध्वनि प्रकाशमय नेत्र, निर्मल वर्ण और स्वास्थ्य-सात्विक शरीर का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। जिनकी साधु बर्फ में नंगे बैठ कर भी ठण्ड से बचे रहते हैं। सैकड़ों मील बिना ठहरे दौड़ कर भी थकान का अनुभव नहीं करते हैं। भारतीय साधु ऐसे ऐसे आश्चर्य [illegible] करते हैं, जिन्हें हम पश्चिमी लोग मानते भी [illegible] हैं।

दीनका हृदय देव उपासना करता है। इससे कोई [illegible] बनाते हैं। कोई धर्म ग्रन्थ पढ़ते हैं। हमी ईश्वर के नाम से कोई मुक्ति चाहता है। कोई अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहता है, परन्तु ईश्वर के नाम की पवित्रता में कोई बाधा नहीं आती है।

अभागो ! आँखें खोलो !!

[समर्थ गुरु रामदास]

अभागे को आलस्य अच्छा लगता है। परिश्रम करने से वह चुराता है और अधर्म अनीति से भरे हुए कार्य करने के सोच विचार करता रहता है। सदा अमित, अनिंद्य, चिड़चिड़ा, व्याकुल और संतप्त सा रहता है। दुनिया में सब लोग उसे अविश्वासी, धोखेबाज, धूर्त, स्वार्थी, तथा निष्ठुर दिखाई पड़ते हैं। भलों की संगति उसे नहीं सुहाती, आलसी, प्रमादी, नशेबाज, चोर, व्यभिचारी, वाचाल और नटखट लोगों से मित्रता बढ़ाता है। कलह करना, कटुवचन बोलना, पराई घात में रहना, गंदगी, मलीनता और ईर्षा में रहना यह उसे बहुत रुचता है।

ऐसे अभागे लोग इस दुनियां में बहुत हैं। उन्हें विद्या प्राप्त करने से, सज्जनों की संगति में बैठने से, शुभ कर्म और विचारों से चिढ़ होती है। झूठे मित्रों और सच्चे शत्रुओं का संख्यादिन दिन बढ़ाता चलता है। अपनी बराबर बुद्धिमान उसे तीनों लोकों में और कोई दिखाई नहीं पड़ता। खुशामदी चापलूस, चाटुकार और धूर्तों की संगति में सुख मानता है और हितकारक, खरी बात कहने वालों को पास भी खड़े नहीं होने देता नाश के पथ पर सरपट दौड़ता हुआ वह मंदभागी पग पग में विपत्तियों के भारी भारी पाषाण अपने ऊपर लादता चला जाता है।

कोई अच्छी बात कहना जानता नहीं तो भी विद्वानों की सभा में वह निर्लज्जता पूर्वक बेतुका सुर अलापता ही चला जाता है। ज्ञान का संचय, परिश्रम, उत्साह, विनम्र भाव, मधुर और मित भाषण में उन्नति का मार्ग निहित है यह बात उसके गले नहीं उतरती और न यह बात समझ में आती है कि अपने अन्दर की त्रुटियों को ढूंढ निकालना एवं उन्हें दूर करने का अखण्ड प्रयत्न करना जीवन सफल बनाने के लिए आवश्यक है। हे अभागे मनुष्य ! अपनी आस्तीन में सर्प के समान बैठे हुए इस दुर्भाग्य को देख ! तुम क्यों नहीं देखते ? क्यों नहीं पहचानते ?

मौन उपदेश

उपदेश किस प्रकार दिया जाता है, शिक्षा कैसे दी जाती है ? क्या मंच पर से श्रोताओं को व्याख्यान पर व्याख्यान सुना कर उन्हें ज्ञान दिया जा सकता है ? उपदेश का अर्थ है ज्ञान का आध्यात्मिक वितरण। वास्तव में यह तो केवल एकान्त में ही हो सकता है। जो मनुष्य घंटे भर तक व्याख्यान सुनता है, पर जिसे उसके द्वारा अपने दैनिक जीवन को बदलने की कोई प्रेरणा नहीं मिलती, उसके लिए सचमुच व्याख्यान का क्या मूल्य है ? इसकी उस मनुष्य से तुलना करो जो घड़ी भर के लिए ही किसी महात्मा की शरण में बैठता है, किन्तु इतने ही से उसके जीवन का सारा दृष्टिकोण बदल जाता है। कौन सी शिक्षा उत्तम है ? प्रभावहीन होकर जोर से व्याख्यान देना या चुपचाप शान्तिपूर्वक आध्यात्म ज्ञान का प्रचार करना।

अच्छा, भाषण का उद्गम क्या है ? मूल, सब का मूल है शुद्ध ज्ञान। उससे अहंकार की उत्पत्ति होती है, फिर अहंकार से विचार प्रकट होते हैं और अन्त में वे शब्दों का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार शब्द उस आदि स्रोत के प्रपौत्र के भी पुत्र हैं। यदि शब्दों का कोई मूल्य हो सकता है तो स्वयं निर्णय करो कि मौन उपदेश का प्रभाव कितना शक्तिशाली न होता होगा।

—श्रीरमन महर्षि.

सत्य का युग आरहा है।

यद्यपि क्षणभर के लिए पैशाचिक शक्तियाँ विजय लाभ करती दिखाई देती हैं, पर वह समय दूर नहीं जब कि दैवी शक्तियों की विजय का ही डंका बजेगा। जिस तरह निशा के अन्धकार के बाद उषा का प्रकाश आता है, वैसे ही आज की मुसीबत के बाद अभिनव आशा का संदेश लिए मानवता के सामने पुण्य प्रभात आवेगा। पापका घड़ा जल्दी फूटने को है और संसार में इकट्ठी हुई मलिनता के बह जाने पर सत्य का युग होने ही वाला है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर,

कलियुग का अन्त करो !

(पं० सूर्यप्रकाश शुक्ल, बदायुं)

आज चारों ओर पाप कर्मों की अधिकता दिखाई पड़ती है। इन पाप कर्मों से बड़ी दुखदायी परिस्थितियां उत्पन्न होकर मनुष्य जाति को क्लेश और कलह की अग्नि में जलाती हैं। दुखों में कमी करने के लिए यह आवश्यक है कि पाप कर्मों के प्रति घृणा उत्पन्न की जाय, अनीति और अधर्म के विरुद्ध जोरदार लोकमत तैयार किया जाय। यह निश्चय है कि जनता में जब तक कुकर्मों के प्रति रोष और इन्हें मिटाने के लिए विरोध उत्पन्न न होगा, तब तक उन्हें न तो मिटाया जा सकेगा और न घटाया जा सकेगा।

दुर्भाग्य से हमारे देश में एक बड़ी ही आत्मघाती विचारधारा चल पड़ी है, जो पापों के विरोध को निर्बल बनाती है और पाप तथा पतन को सहायता पहुंचाती है। यह आत्मघाती भावना 'कलयुग' की मान्यता है। दुष्ट कर्म होते देखकर अक्सर लोग कह दिया करते हैं—'भाई, यह कलियुग का जमाना है, इसमें ऐसा ही होने वाला है, युग के प्रभाव को कोई मेट नहीं सकता।" इन विचारों का प्रभाव यह होता है कि लोग यह मान बैठते हैं कि अधर्म, अनीति, दुष्कर्म पाप किसी अदृश्य प्रेरणा के कारण बढ़ रहे हैं। इन्हें रोकना हमारे वश की बात नहीं है। किसान नराई न करे तो अन्न के पौधों की अपेक्षा घास पात ही खेत में अधिक बलवान हो जावेंगे। हम यदि पाप कर्मों को नष्ट करने के विचार और प्रयत्न शिथिल करदें तो निश्चय ही धर्म की सुख शान्तिमयी खेती नष्ट हो जायगी और दुष्कर्मों की कटीली झाड़ियाँ चारों ओर छा जावेंगी।

कलियुग का आम तौर पर जो अर्थ समझा जाता है, वास्तव में वह "मनुष्य में मनुष्यता की कमी" का दूसरा नाम है। स्वास्थ्य की कमी का नाम रोग है। स्वास्थ्य स्वाभाविक वस्तु है और रोग अस्वाभाविक। इसी प्रकार धर्म आचरण करना, सदाचार का पालन करना, मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है और कुकर्म करना अस्वाभाविक। रोग के उत्पन्न होते ही उसे मार भगाने का प्रयत्न किया जाता है और यह विश्वास किया जाता है, कि चिकित्सा द्वारा बीमारी को हटाना सम्भव है। इसी प्रकार हमें यह विश्वास करना चाहिये कि कलियुग अस्वाभाविक है, अस्थायी है और उसे मार भगाया जा सकता है। निर्धन मनुष्य अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है, हमें भी मनुष्य की कमी को दूर करके मनुष्यता को वास्तविक विशुद्ध एवं धर्ममय स्थिति में रखने का उद्योग करना चाहिए।

इसे सिवाय, दुष्ट कर्म करने वाले, लोग ही अक्सर कलियुग की मान्यता का प्रचार करते हैं, ताकि उनके कुकर्मों का विरोध निर्बल होजाय और वे अपनी अनीति को आसानी के साथ जारी रख सकें। यह एक बौद्धिक षड्यन्त्र है, जिसके पीछे पापात्मा लोगों की कूट नीति छिपी हुई है। अब समय आगया है कि इस पर्दे को उघाड़ दिया जाय और यह प्रकट कर दिया जाय कि आजकल कलियुग का जो अर्थ किया जा रहा है, वैसी स्थिति तो सतयुग त्रेता द्वापर में भी उत्पन्न हुई थी और आज भी सतयुगी लोग मौजूद हैं। यदि युग का प्रभाव ही मुख्य है तो एक युग में दो प्रकार के लोग क्यों होने चाहिए?

पाठकों को "कलियुग" नामक बौद्धिक षड्यन्त्र में फँसने से इनकार कर देना चाहिए और दुखदायी कुकर्मों को जोरदार विरोध द्वारा नष्ट करके सदाचार का शान्ति दायी सतयुग लाने का सतत प्रयत्न करना चाहिये।

सतयुग आने वाला है।

(भारतीय योगी)

—❀—

जब लोग सुनते हैं कि कलियुग के स्थान पर सतयुग आ रहा है, अथवा भगवान प्रकट होकर पापियों का नाश करने वाले हैं, तो उनको बड़ा आश्चर्य होता है।

इसका कारण यह है कि उन्होंने कभी कलियुग और सतयुग के भेद पर गौर नहीं किया और उनकी बुद्धि भगवान की लीला को समझने में असमर्थ है।

कलियुग का अर्थ है झूठ, दगाबाजी, स्वार्थ साधन, अन्याय, अत्याचार। जिस जमाने में इन बातों की अधिकता हो वही कलियुग है। इसके विपरीत जब लोग सच्चाई की राह पर चलने लगें, आपस में प्रेम रखें, एक दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझें तो उस जमाने को सतयुग कहा जाता है।

इस समय संसार में हर तरह के पाप-कर्मों की हद होगई है, जिनके किस्से हम सब अपनी आंखों से देखते और कानों से सुनते रहते हैं। इन्हीं पापों के फल से संसार में यह लड़ाई की आग भड़की है, जिससे बड़े-बड़े देश और नगर नष्ट हो रहे हैं और सब लोग बेहद तकलीफ पा रहे हैं। भविष्य के जानने वालों का कहना है, कि यह लड़ाई बीच में रुक रुक कर बहुत समय तक चलेगी। जब दुनियां के ज्यादातर पापी, अन्यायी, अत्याचारी खतम हो जायेंगे, या तकलीफ सह कर उनकी बुद्धि सुधर जायगी तब लोग पाप-कर्मों को त्याग कर सत्य, न्याय, परोपकार के रास्ते पर चलने लगेंगे। इससे उनके कष्ट दूर हो जायेंगे और वे सच्चा सुख पा सकेंगे।

भविष्यवाणियों के अनुसार इस नये युग की नींव अगस्त सन् १९४३ से पड़ने वाली है। पर इस समय इस परिवर्तन का अनुभव ज्ञानी तथा भक्तजनों को ही हो सकता है। मोटी बुद्धि वाले या अश्रद्धावादी तो इस समय को और भी बुरा—घोर कलियुग समझेंगे, क्योंकि अगस्त के महीने में सतयुग का पहला कदम उठते ही कलियुग अपनी पूरी ताकत से उसका मुकाबला करने लगेगा, इससे युद्ध की भयङ्करता और भी बढ़ जायगी तथा सब लोग कष्ट और आपत्तियों से व्याकुल होकर त्राहि-त्राहि करने लगेंगे। पर जो भगवान की लीला को समझते हैं, वे इस दशा को देखकर प्रसन्न होंगे, क्योंकि कलियुग का यह विकट रूप बुझते हुये दीपक के अन्तिम प्रकाश के समान होगा। इसलिये वे सतयुग की विजय के लिये तन-मन धन से सहायता करेंगे। ऐसे ही लोग इस संकट समय को पार करके सतयुग के आने वाले राज्य में सुख पा सकेंगे।

आपका भी कर्तव्य है कि कलियुगी कर्मों को छोड़कर सतयुग के अनुयायी बनिये, जिससे इस महान् संकट से रक्षा हो सके।

———

ज्ञान यज्ञ में सात्विक सहायताएं—

वर्तमान कागज के घोर अकाल में अखण्ड-ज्योति की प्राण रक्षा के निमित्त उदार हृदय पाठकों ने निम्नलिखित सहायतायें इस मास भेजी हैं। इस पैसे से शुद्ध स्वदेशी हाथ का बना कागज उत्पन्न किया जा रहा है। हमारा विश्वास है कि यह सात्विक दान अपने दाताओं के पास हजारगुना होकर लौटेगा।

५) जमादार पं० रामभरोसे शर्मा, युद्ध सैनिक
४) पं० भगवत स्वरूपजी शाहाबाद
२) श्रीकेशवनाथ सिंहजी कानूनगो, खलीलाबाद
२) पं० प्रेमनारायण शर्मा, गिर्दावर कानूनगो, अम्बाह
२) श्री रूपचन्दजी हैडमास्टर हरिओम् स्कूल, मुलतान
१।-) पं० द्वारिकाप्रसाद शर्मा छुरी बिलासपुर
१) श्री बिशम्भरदयाल अग्रवाल, बरेली
१) श्री शिवसागरजी गुप्ता, आगरा
१) श्री हरीप्रसाद जी शर्मा, मिकोहना
१) श्री आनन्दस्वरूप गुप्ता, हापुड़
१) श्रीमदनलाल खुशालचन्द जी शाहाबाद
१) श्री सुशीलचन्द जी शाहाबाद
॥) श्री गोविन्दराम जी स्वर्णकार, छिंदवाड़ा

———

स्वार्थ-त्याग द्वारा सुधार

(श्री धर्मपालसिंह जी, रुड़की)

मनुष्य में अपूर्णता और त्रुटियां भरी हुई हैं, इससे अज्ञानवश बहुत से पाप होते रहते हैं। समय आने पर जिनके लिए वह स्वयं पश्चाताप करता है और सुधार के मार्ग पर चल पड़ा होता है। इसलिए किसी व्यक्ति का सच्चा दोष देखने पर भी हमें चाहिये, कि हम उसके प्रति घृणा, द्वेष, क्रोध अथवा और किसी प्रकार का अपमान सूचक बर्ताव न करें अर्थात् सख्ती से सुधार की चेष्टा न करें। बहुत बार हमारे क्रोध और अपमान को दोषी व्यक्ति सह लेता है। क्योंकि पाप के भय से वह भयभीत होता है। उसकी कुपित वृत्ति कुछ समय के लिए दब जाती है, परन्तु सर्वदा के लिए उसका नाश नहीं होता। हमारे द्वारा किये गये अपमान का बदला लेना उसके मन में खटकता रहता है, जो उसकी क्रोधाग्नि में घृत जैसा काम करता है। हमारे लिए उसकी द्वेष पूर्ण चेष्टा होने शुरू हो जाती है, जो काम, क्रोध और हिंसा की वृत्तियों को जगा कर हमारे पतन का कारण होती है, यदि किसी का सच्चा सुधार करना हो तो उसके दोषों को जड़ से उखाड़ना चाहिये। प्रेम, सेवा, स्वार्थ त्याग, द्वारा उसके मन पर अधिकार करना चाहिये, क्योंकि मन ही अच्छी बुरी वृत्तियों का स्थान है। परन्तु इस प्रकार दोषों को दूर करने के लिए असीम स्वार्थ त्याग और आत्म विश्वास की आवश्यकता है। इस प्रकार के सच्चे स्वार्थ त्याग की एक घटना पाठकों के सामने रक्खी जाती है। काकेशश के प्रान्त में दो भाई रहते थे। बड़ा भाई ईश्वर भक्त और शुद्ध आचरण था। उसने अपना कर्त्तव्य जान कर यह निश्चय किया, कि शिक्षा द्वारा छोटे भाई का जीवन एक आदर्श जीवन बनावे, परन्तु छोटा भाई उसके विचारों में बिलकुल ही विपरीत था। स्कूल से वह भाग आता था और पतंग, जुआ वालों की टोली में अपना समय गँवाता था। बड़े भाई ने उसको अन्य और कई कामों में लगाया, पर सब व्यर्थ गया। धीरे धीरे वह शराबी, जुआरी और चोर बन गया-आधी २ रात शराब के नशे में चूर वह घर आता था, बड़ा भाई उसको बहुत समझाता था। यहां तक रो २ कर प्रार्थना भी करता था, कि भाई तू मेरा और अपना जीवन क्यों नष्ट कर रहा है, लेकिन सब समझाना व्यर्थ जाता था, एक दिन रात को छोटा भाई दीवार फांद कर घर के भीतर आया, उसने बड़े भाई को सोते से जगाया। बड़े भाई ने देखा कि छोटे भाई के सब कपड़े हाथ, पांव खून से तर हैं और वह बहुत घबराया हुआ है, कारण पूछा, छोटे भाई ने कहा मुझे कहीं छिपादे मुझ से एक खून होगया है। पुलिस मेरा पीछा कर रही है। कुछ देर चुप रह कर बड़ा भाई बोला, यहां कहां छिपोगे? अच्छा इधर आओ-हाथ मुंह धोओ और खून के सब कपड़े उतार दो और लो यह मेरे साफ कपड़े पहन लो-बड़े भाई ने छोटे भाई के खून से तर सब कपड़े खुद पहन लिए और छोटे भाई को एक अलमारी में बन्द कर दिया और घर का दरवाजा खोल दिया, पुलिस अन्दर आ गई-बड़े भाई के कपड़े खून में रँगे देख कर पुलिस ने उसे खूनी ठहराया और गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। सुबह को मजिस्ट्रेट के सामने उसे पेश किया गया, जज ने पूछा-"तुमने खून किया? उसने उत्तर दिया-हजूर इस जुर्म की सजा मुझे भोगनी ही पड़ेगी। इसके अलावा मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। मजबूर होकर मजिस्ट्रेट ने उसे फांसी की सज़ा का हुक्म दिया। फांसी पर लटकने से पहिले बड़े भाई ने छोटे भाई को एक पत्र लिखने की स्वीकृति मांगी साथ साथ यह भी प्रार्थना की

कि उसके भाई के सिवाय और कोई पत्र को बीच में न खोले, यह सब स्वीकार कर लिया गया—तत्पश्चात् बड़े भाई ने भगवान का स्मरण करके छोटे भाई के लिए अपना जीवन निछावर कर कर दिया—चपरासी लिफाफा लेकर नगर में पहुँचा और छोटे भाई ने लिफाफा खोलकर पढ़ा। लिखा था:—प्यारे भाई! कल सुबह फांसी होगी, मैं बड़ी खुशी और प्रेम से तुम्हारे लिए स्वार्थ त्याग कर रहा हूँ—क्योंकि मुझे पूर्ण आशा है, कि तुम मेरे पीछे ऐसा पवित्र जीवन व्यतीत करोगे, जिससे बड़ों की और हमारी इज्जत होगी और मेरे प्रेम को स्वीकार करते हुए अपने सब दोषों को छोड़कर पवित्र जीवन व्यतीत करोगे। पत्र पढ़कर छोटा भाई पृथ्वी पर खड़े से गिर पड़ा और फूट २ कर रोने लगा और अपने को धिक्कारते हुए बोला, हाय अफसोस! मेरे लिए भाई ने अपनी जान दी—इसी क्षण से उसके जीवन में अद्भुत परिवर्तन होना शुरू होगया और शनैः शनैः अन्त में वह एक महान व्यक्ति प्रसिद्ध हुआ। [illegible] प्रकार देव पुरुष हमें सुधार [illegible] मार्ग सिखाकर ऐसे लोकों को चले जाते हैं, जहां सदैव आनन्द ही रहता है।

यौवन की जिम्मेदारी।

(श्री० सच्चिदानन्दजी पाण्डेय, पुँवाया)

—❦—

युवावस्था जीवन का वह अंश है, जिसमें उत्साह, स्फूर्ति, उमंग, उन्माद और क्रिया शीलता की तरंगें प्रचण्ड वेग के साथ बहती रहती हैं। आज तक जितने भी महत्व पूर्ण कार्य हुए हैं, उनकी नींव यौवन की सुदृढ़ भूमि पर ही रखी गई है। बालकों और वृद्धों की शक्ति सीमित होने के कारण उनसे किसी महान् कार्य की आशा बहुत ही स्वल्प मात्रा में की जा सकती है।

वृक्ष बसन्त ऋतु में पल्लव, पुष्प और फलों से सुशोभित होते हैं। मनुष्य अपने यौवन काल में पूर्ण आभा के साथ विकसित होता है। वृक्षों को कई बसन्त बार-बार प्राप्त होते हैं, पर मनुष्य का यौवन बसन्त केवल एक बार ही आता है, इसके बाद असमर्थता और निराशा से भरी वृद्धावस्था तत्पश्चात् मृत्यु! जिसने यौवन का सदुपयोग नहीं कर पाया, उसको हाथ मल-मल कर पछताना ही शेष रह जाता है।

यौवन सब से बड़ी जिम्मेदारी है। यह ईश्वर की दी हुई सब से बड़ी अमानत है, जिसका समय रहते उत्तम से उत्तम उपयोग करना चाहिए। किसी भी देश और जाति का भाग्य उसके नवयुवकों के हाथ रहता है। जिस समाज के युवक जागरुक, कर्तव्य परायण और देश भक्त हैं, वहीं सामूहिक उन्नति हो सकती है। जहाँ के युवकों में आलस्य, अकर्मण्यता, स्वार्थ परता और दुर्गुणों की भरमार होगी, वह देश जाति कदापि उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकती।

एक समय जो संसार का मुकटमणि था, वह भारत आज सब प्रकार दीन-हीन, पतित-पराधीन बना हुआ है। पद-दलित भारत माता अपने सपूतों की ओर सजल नेत्रों से देख रही है और चाहती है, कि उसके नौनिहाल अपने तुच्छ स्वार्थों को छोड़कर आगे बढ़ें और अज्ञान, दारिद्र, दुख दुराचार रूपी असुरों को इस पुण्य भूमि से मार भगावें। भारतीय नवयुवक यौवन की जिम्मेदारी को अनुभव करते हुए तुच्छ स्वार्थों को छोड़कर देश सेवा के पथ पर अग्रसर हों इसकी आज ही सबसे बड़ी आवश्यकता है।